UNIVERSAL LIBRARY
OU_182239
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H81
L A

Accession No P.G.H 6084

लहरी गौरीशंकर
अंगारों की सीढ़ियाँ

This book should be returned on or before the date last marked below

अंगारों की सदियाँ

[कविता-संग्रह]

गौरीशङ्कर लहरी

सूचना तथा प्रकाशन सचालनालय द्वारा मध्यप्रदेश
शासन साहित्य परिषद् के लिए प्रकाशित
१९५६

मूल्य पचहत्तर न० पै०

मुद्रक : बा. बा. देवधरे
गोपाल प्रेस, महाल, नागपुर

प्रकाशकीय

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त शिक्षा प्रसार के साथ ही प्रादेशिक भाषाओ का विकास तथा उच्च श्रेणी के साहित्य निर्माण को प्रोत्साहित करने का कार्य मध्यप्रदेश सरकार ने अपने हाथ मे लिया। इस कार्य को मूर्तरूप प्रदान करने के उद्देश्य से इस राज्य मे ६ मार्च १९५४ को मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् की स्थापना की गई। इसके सभापति प रविशंकर शुक्ल और सचिव, शिक्षा सचिव श्री रमाप्रसन्न नायक है। उच्च श्रेणी के साहित्य के निर्माण हेतु, हिन्दी तथा मराठी के उत्कृष्ट ग्रन्थ, काव्य, नाटक तथा अनूदित ग्रन्थ आदि के लिये, प्रतिवर्ष, इस परिषद् द्वारा पुरस्कार दिये जाते है। इसके अतिरिक्त इस परिषद् द्वारा समय समय पर भाषण-मालाओ का आयोजन किया जाता है, जिनमे हिन्दी तथा मराठी के अधिकारी विद्वानो को आमन्त्रित किया जाता है।

गत दो वर्षों मे इस परिषद् द्वारा किये गये कार्यों से यह विदित होता है कि जिस उद्देश्य से इस परिषद् की स्थापना की गई थी, उसकी पूर्ति की दिशा में इसने पर्याप्त प्रगति की है। १९५४-५५ में परिषद् द्वारा हिन्दी तथा मराठी की १९ श्रेष्ठ पुस्तको पर पुरस्कार दिया गया। इसके अतिरिक्त, तरुण पीढी के लेखकों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से "विद्यार्थी निबन्ध प्रतियोगिता" के अन्तर्गत हिन्दी तथा मराठी के १० श्रेष्ठ

निबन्धो पर भी विद्यार्थियों को पुरस्कार दिया गया। अभी तक परिषद्, "व्याख्यानमाला" के अन्तर्गत, हिन्दी तथा मराठी के आठ विद्वानो के भाषणों का आयोजन कर चुकी है। परिषद् ने, अपनी योजना मे अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रन्थो का हिन्दी तथा मराठी मे अनुवाद कराने का कार्य भी सम्मिलित किया है, जिसके अन्तर्गत अभी तक चार ग्रन्थो का अनुवाद-कार्य सम्पन्न हो चुका है। १९५५-५६ में परिषद् द्वारा हिन्दी तथा मराठी की १३ श्रेष्ठ पुस्तको पर पुरस्कार दिया गया।

शासन साहित्य परिषद् ने, मध्यप्रदेश के सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय पर जिन १४ पुस्तको का प्रकाशन-भार सौपा है, स्फुट कविताओ का सग्रह "अगारो की सदिया" उनमे से एक है। इसके रचयिता, श्री गौरीशङ्कर लहरी को, उक्त संग्रह के लिये, १९५४-५५ मे शासन साहित्य परिषद् ने ५०० रुपये का पुरस्कार दिया है।

—•—

बोध

प्रस्तुत कविताए राष्ट्र जीवन के प्रधान प्राणवान क्षणों से संबद्ध है। २६ जनवरी १९५० के गणतंत्र दिवस की उल्लासमयी घडी से आरभ होकर राष्ट्र जीवन की नवीन निर्माण चेतना तक इनका स्वर मुखरित हुआ है। 'मा स्वतंत्रते' से ही अभ्यर्थना करके 'निवेदन' का सगीत उत्थित होता है। दासता की सदियो का अधकार वास्तव मे एक नवीन प्रभात को देकर तिरोहित हो गया था—इसी हर्ष-निर्भर वाणी मे 'प्रभात गीत' और उसके साथ आत्मोत्थान के संकल्प रूप 'आज का व्रत' स्फुरित हो उठा है।

'नौ अगस्त (१९४२)' नामक लबी कविता अगस्त आदोलन को चित्रित करती है जो यथार्थत. भारतीय जन के स्वातत्र्य-प्रयास का चरमबिन्दु था। इस रचना की समाप्ति तीन वर्ष पूर्व हुई यद्यपि इसके कुछ छद सन् १९४६ मे ही लिखे जा चुके थे।

'जीवन की नई तसवीर' को सविधान का गीत कहना अधिक स्पष्ट होता क्योकि इसमे भारत के सविधान के मूल तत्वो का रसपूर्ण सकेत ही भरा है। राष्ट्रपिता को भारत के नेतृत्व ने जो वचन दिया था उसी का राग 'वचन' नामक कविता मे ध्वनित है।

शेष रचनाएं भारतीय जनता को उन नवीन दायित्वों तथा कर्तव्यों का बोध कराती है जो स्वाधीनता और सविधान के फलस्वरूप उन्हे मिले है।

गौरीशङ्कर लहरी

सूची

माँ स्वतंत्रते	....	१
निवेदन	....	४
प्रभात गीत	....	६
आज का व्रत	....	८
जीवन-मरण	....	१०
नौ अगस्त (१९४२)	....	१२
वचन	....	२२
संविधान का गीत	....	२८
अगारों की सदियाँ	....	३५
अपना संबल	....	३९
नया गाना	....	४२
जागृति गीत	....	४५

माँ स्वतंत्रते !

माँ स्वतंत्रते !
भारत के शून्य प्रांगण में,
मानो अनायास आई तू उस दिन;
मुक्त पदध्वनि से तेरी
मुखरित हुआ जीवन-छिन।
किन्तु तुम निरर्थक हो !
प्राण खो दिया है तुमने
सदियों की रक्त-रंजित कथा में।

देव है तुम्हारी बुरी
हिंसा के द्वार से तुम्हें
आना सुहाता रहा।
इसीलिए सहज अहिंसा की
निर्मल वाहिका में बैठ,
त्याग की विभूतियों से सज-धज कर;
आहुतियों की बीथी में
नवीन जीवन कलश लिए
आई जब—
तब से एक अद्‌भुत विडम्बना है।
कहां भूल आई तू
जीवटमयी प्रेरणा का मन्त्र ?
कहां है तेरा गतिमय स्पर्श माँ ?
भारतीय जाति के ठिठुरे से प्राणों में
एक बूंद संजीवन-रस
ढालने की क्षमता क्या तुझमें रही नहीं ?
आज कई वर्ष बीते,
कहां जा, छिपी हो तुम ?

मोहिनी सी आओ, माँ !
जड़ता के दैत्य से अमृत-घट छीन लो।
कांटों में पडे फूल सिगरे तुम बीन लो।
मुरझाए हुए जीवन में,
नया राग भर दो—
खोल दो कपाट सर्वमुखी समृद्धि का
चतुर्दिक, प्यासे जन-जन के कंठ में–
एक-दो घूंट डाल दो, माँ !
पत्थर के प्राण में नया स्वर ताल दो, माँ !
और अधिक निष्क्रियता सहना कठिन है ।
कृपणता तुम्हारी ऐसी–कहना कठिन है !
सरल वदान्यता-सी बरसो, माँ !
तप्त-शप्त जीवन में अविलम्ब सरसो, माँ !

निवेदन

जन-जन-अंतर अंधकार हर,
जगमग जग कर दो।
जगमग जग कर दो॥

वन, पर्वत, सर, तरु-शाखाएं,
नई वायु के स्वर में गाएं,
मानवता का मन दुलराएं,
ऊंचे-ऊंचे चढ़ चलने का,
अक्षय बल भर दो।
जगमग जग कर दो॥

जन-जन-अंतर अंधकार हर,
जगमग जग कर दो।
जगमग जग कर दो॥
कांप रहे दो डग दूरी पर,
बिलख रहे हीरे धूरी पर,
भूखी आंख गडी पूरी पर,
आँस रही जो दुसह विषमता–
यह कटुता हर लो।
जगमग जग कर दो॥
जन-जन-अतर अंधकार हर।
जगमग जग कर दो।
जगमग जग कर दो॥
जो पखे उड़ना भूले हैं,
जिनको कांटे ही झूले हैं,
फूल वही झरझर फूले हैं,
जीवन के पंछी-पराग को–
निर्भय अंबर हो।
जगमग जग कर दो॥
जन-जन-अंतर अंधकार हर,
जगमग जग कर दो।
जगमग जग कर दो॥

प्रभात गीत

नव-प्रभात की किरणे, साथी,
उठ आगे बढ चल।

रात गई, पिछले पल खोई,
पूरब की अंधियारी सोई,
पसर गई उजियारी नभ मे,
निर्मल दूजी घडी न कोई,
डगर, जागरण-वेला से
तप्त तरल, स्वर्ण सजल।
साथी, उठ आगे बढ़ चल।

शिशु की पहली सहज सांस-सी,
जीवन की नित नई आस-सी,
चुप-चुप बढ़ती, बहती आती–
वायु, स्वत्व के मधुर हास-सी,
लहर-लहर मे नव सुगंध-सा
दूर दूर उड़ चल ।
साथी, उठ आगे बढ चल ।

देख, पंख पछी-दल खोले,
अंबर में खुलकर उड़ डोले,
सभी नीड के बंदी छौने,
नए गीत के सुर मे बोले।
तू धरती पर नए चित्र गढ़,
चोटी तक चढ चल ।
साथी, उठ आगे बढ़ चल।

प्राणो की बाजी पर पाया–
अपना रथ जो हाथो आया,
वृद्ध सारथी कहता चलता–
"उधर दूर मंज़िल की छाया।"
लगन लगाए, तेज जगाए,
सुख-सिरजन पथ चल ।
साथी, उठ आगे बढ चल।

आज का व्रत

तुम विचरो किरन किरन सम
कन-कन मे तुम मन-मन मे।
स्वच्छ गगन लाली भर लाया,
तिनका तिनका यो लहराया,
रोर पंछियो की गूजी है,
जीवन ने खोया स्वर पाया।
आज लालसा थिरक रही,
इस क्षण के चरन-चरन मे।

बदल गई है लिपि ललाट की,
नाव पा गई राह घाट की,
बीत गई घड़िया दुर्दिन की
हवा बही है नए ठाट की ।
चमक रहा है अपना पानी,
सूने उजडे नयन-नयन मे ।

बन्द द्वार निर्भय खुल जाए,
नया राग हम मिलजुल गाए,
घर-घर कोने-कोने सुख के
सिरजन-अर्जन पर तुल जाए ।
फूले-फले भाग्य का रोपा,
बजे आज यह व्रत जन-जन म ।

जीवन-मरण

बह निकली सन-सन नव बयार।

कलियों मे अटकी मत्त गंध,
फूलो मे चिटकी खोल बंध,
घिर चले पुंज के पुंज मधुप,
तन की, मन की सुध-बुध बिसार।

जो दबी आग थी राख ढँकी,
कथरी का मोह न त्याग सकी,
झोके भर मे वह सुलग उठी,
बन गई एक भीषण दवाँर।

उकठा तरु मन ही मन घुनता,
पत्तो से प्राण रहा चुनता,
धँस चली भूमि मे पटी मूल,
पीके है अंकुर के दुलार।

उत्साह सिराना जो टूटा,
तब भाग सरीखा सब फूटा,
इन कलम-किए-से प्राणो मे,
जीवन भर लाया मरण-ज्वार।

नौ अगस्त (१९४२)

उमड़-घुमड घट-घट का सागर,
जिस दिन गरजा लिए हलाहल।

उस दिन मौत सिगार किए थी,
उस दिन मौत दुलार लिए थी,
उस दिन मौत बहार लिए थी,
उस दिन मौत विचार लिए थी।

उस दिन अपना, इसका, उसका
मौत नही घर-बार लिए थी,
उस दिन मौत हुई मतवाली,
जीवन-पारावार लिए थी।

उस दिन तिल-तिल के प्राणो मे
भर आया विद्रोह छलाछल ।
उमड़-घुमड घट-घट का सागर,
जिस दिन गरजा लिए हलाहल ।

उस दिन जीना याद आ गया,
उस दिन जीना स्वाद पा गया,
उस दिन जीना भर जीना था,
उस दिन मरना भी जीना था ।

उस दिन जीने की कीमत पर,
दुनिया मिट्टी-मोल बिकी थी,
उस दिन आग-लगी सांसो ने,
सांसो की तसवीर लिखी थी ।

उस दिन 'कहा' नही था, था बस–
'अरे चलाचल, अरे चलाचल ।'
उमड़-घुमड़ घट-घट का सागर,
जिस दिन गरजा लिए हलाहल ।

उस दिन नियम-इयम टूटे थे,
उस दिन सब छुट्टा छूटे थे,
उस दिन पथ ही मोक्ष बना था,
उस दिन सबने सुख लूटे थे।

उस दिन 'बलिया' मे पापी का,
मुंह काला था देश-निकाला,
उस दिन चमका तेज 'सितारा'
लील गया अंधड-अंधियाला।

उस दिन सब अधिकार जी उठे,
भर आया माता का आँचल।
उमड़-घुमड़ घट-घट का सागर,
जिस दिन गरजा लिए हलाहल।

उस दिन देश गुलाम नहीं था,
दुःशासन का नाम नहीं था,
वैसे कोई काम नहीं था,
मरने का 'बिसराम' नहीं था।

उस दिन सूली पर चढ़ बोला,
'मौत कि आज़ादी' का नारा,
उस दिन टूटे-कटे तार भी,
गाते थे विप्लव मतवारा।

उस दिन मुंहफाडे पृथिवी पर
दौड़ पड़ा था स्वयं रसातल।
उमड़-घुमड़ घट-घट का सागर,
जिस दिन गरजा लिए हलाहल।

उस दिन तन, उनचास पवन था,
उस दिन मन, सन संतावन था,
उस दिन सांस दवॉर हुई थी,
उस दिन आस दुधार हुई थी।

उस दिन संतावन की रोटी,
नस-नस में हुंकार उठी थी,
उस दिन बूंद-बूंद शोणित की,
ध्वंस-ध्वंस फुंकार उठी थी।

उस दिन ज़ालिम की छाती पर,
मूंग दली जाती थी पल-पल।
उमड़-घुमड़ घट-घट का सागर,
जिस दिन गरजा लिए हलाहल।

साध तिलक की उस दिन पूरी,
बात तिलक की उस दिन पूरी,
उस दिन 'मोती' का पानी था,
उस दिन दीनबंधु, दानी था।

उस 'जतीन्द्र' की भूखी हड्डी
उस दिन भोजन भर पाई थी,
'शेखर' के जौहर की तबियत,
उस दिन नया रग लाई थी।

उस दिन बोले घाव 'लाज' के
रावी का जी भरा तलातल।
उमड़-घुमड़ घट-घट का सागर,
जिस दिन गरजा लिए हलाहल।

उस दिन जलियांबाग़ फला था,
उस दिन 'डायर' का बदला था,
उस दिन खून खौल मचला था,
उस दिन हर घर एक किला था।

उस दिन काकोरी के बन्दो--
के अरमान हुए हरियाले,
उस दिन 'बिस्मिल' की छाती के--
फूटे-भरे मिटे थे छाले।

उस दिन साम्राज्य के कीडे,
भोग रहे थे करनी का फल।
उमड़-घुमड़ घट-घट का सागर,
जिस दिन गरजा लिए हलाहल।

उस दिन कपिल तेज की आगी,
चली जलाने सभी अभागी,
उस दिन सगरवंश मिटना था,
उस दिन कुछ अनघट घटना था।

उस दिन उतर पडी थी गंगा,
सब पापों को पुण्य बनाने,
उस दिन के सब जतन भगीरथ,
उस दिन पहुंची राख ठिकाने।

उस दिन रुद्र जटाए खोले,
देने चले चुनौती को बल।
उमड़-घुमड़ घट-घट का सागर
उस दिन गरजा लिए हलाहल।

उस दिन काले के फन-फन पर,
तांडव नाच उठे थे नटवर,
गोप-ग्वाल सब सखा-संगाती,
उस दिन कूदे सभी भूलकर।

उस दिन बंसी के हर सुर में,
उमडा विप्लव बज्रनाद था,
उस दिन बदल पड़ा जो अब तक,
कंगालों का आर्तनाद था।

उस दिन हर डग मे 'तथास्तु' था,
उस दिन सभी अमंगल-मंगल।
उमड़-घुमड़ घट-घट का सागर,
उस दिन गरजा लिए हलाहल।

उस दिन था गोवर्धन-पूजन,
उस दिन छिना इन्द्र का आसन,
उस दिन कृष्ण हुए थे बागी,
उस दिन नई भक्ति थी जागी।

उस दिन छिंगुरी पर पहाड था,
सर्वनाश उस दिन ची बोला,
उस दिन घिरी घटा जुल्मो की
बरसी, बिजली, बादल बोला।

उस दिन नरक नही था भाई,
अगर स्वर्ग था, तो थी हलचल।
उमड़-घुमड़ घट-घट का सागर,
उस दिन गरजा लिए हलाहल।

वचन

तुमने वचन दिया बापू को,
भूल न जाना मेरे भैया !
'राम-राज्य का सृजन करेगे'
देख रही है भारत मैया।
स्वर्ग जोत-सा धरती का धन,
बापू गांधी जो पाया था।
तीस कोटि जन के सुभाग का,
रथ स्वतंत्रता तक लाया था।
काया भस्म बन गई उसकी,
जोत हुई आंखो से ओझल।
समा गया है वह अंतर मे,
जीवन मे जिसकी है हलचल।
उसके पथ का सार चुनो तो
पार लगेगी भारत नैया ॥ १ ॥

भारत के दो टूक हुए जब,
बापू का दिल टूट गया था।
वे साहस थे स्वयं न उनका,
धीरज इससे छूट गया था।
उमड़-घुमड़ मानवता उनके--
अंतर मे प्रतिपल रोती थी।
उनके रहते भाई-भाई की--
हत्या क्यो कर होती थीं ?
जाति-धर्म से बड़ा मर्म है--
'मानुस' को मानुस सा-मानो।
भेद मिटा दो, रहो एकदिल,
सार अहिंसा का पहचानो।
घर जैसा जब बना न भारत,
बापू का दिल टूट गया था।
चली गोलियां तीन कि उस दिन,
भाग्य जगत का फूट गया था ॥ २ ॥

गंगा जमुना सरस्वती सब
नदियो की पावन धाराएं ।
सत्य अहिंसा की विभूति की,
गरिमा गुन गहरे मे गाएं ।
पवन कणो मे गूंज रही है,
जयजयकार महात्माजी की ।
आशा मरी करोड़ जनों की,
उनके चरणो की धूरी की ।
घट-घट मे बस गई मूरती,
मन को अभी मांजना बाकी ।
करके दिखलाना है उसको,
जो उनकी बानी कह थाकी ।
बापू के रहते भटके हम,
भस्मपात्र हीं अब बन पाएं ।
गंगा जमुना की धाराएं,
जिसके गुन गहरे में गाएं ।। ३ ।।

उसी भस्म की आनबान मे,
राज-तरंगिणि बहे हमारी ।
एकप्राण मन एक कर्मरत.
गांधी-भूमि गढें हम न्यारी ।
हिल-मिल कर सब रहे प्रेम से,
नहीं किसी को आंख दिखाएं ।
पीर पराई जाने-माने,
द्वेष-बैर को मन न बसाएं ।
ये मजूर, हरिजन, किसान है,
दलित-गलित, ठिठुरे-ठिठके से ।
रूपरंग जीवन मे ढाले,
बापू के अपने सपने से ।
उसी कल्पना के प्रसाद से,
जग की मिटे अंधता सारी ।
उस विभूति के ज्ञान-ध्यान से,
हो धरती की रचना प्यारी ।।४।।

अरे सपूतो ! राष्ट्रपिता के,
उनका दिल मत और दुखाना।
उनके मन का राष्ट्र बनाओ,
यदि उनको तुमने पहचाना।
नदी-नदी मे हरियाली में,
उनकी अस्थि-भस्म का कनकन।
सजग निरंतर आंख लगाए,
हमें देखता है चिंतित मन।
'खूब कहा जीते-जी 'बापू'
मरने पर भी एक न मानी।'
चढी धार पर व्यथा कह रही—
'उतर जायगा मेरा पानी।'
बेलिहाज है दुनिया भाई,
मत उससे ऐसा कहलाना—
' छलपुत्रो ने जीते-मरते
जाना उनका हृदय दुखाना।' ॥५॥

चले गए पर वे सदियो का —
काम दे गए राह बताकर।
तिल-तिल विगत बात की कहकर,
डग-डग की कुलकानि जताकर।
मरने की भय-भीति मिटा दो,
सचमुच अगर चाहते जीना।
तब जीने का अर्थ कि रोटी,
बने हमारा देह पसीना।
ईट पके अंतर के तप मे,
बने उसी से नई इमारत।
सदियों के सूखे डंठल पर,
कमल सा नूतन भारत।
छेड़ रही जो कुत्सा मन को
छेडे वह नवतत्री का स्वर।
चले गए बापू, सदियों का—
काम दे गए प्राण लुटाकर ॥६॥

संविधान का गीत

१. जीवन की नई तसवीर

सदियों बाद नए जीवन की
खिंची एक तसवीर देख लो।

टंगी हिमालय की खूंटी पर,
सागर की लहरों में हिलती
प्राणों की हरियाली इसकी,
रेखा की हर धुन में मिलती

मर्यादा के स्त्रोत राम हैं,
कर्मयोग की गीता नदियां।
वन के विटप साधु मुनि ठाढे,
देख चुके दुख-सुख की सदियां

मानुस की परतीत-प्रीत का,
तीरथ देखो, तीर देख लो।
संविधान मे नवजीवन की,
खिची एक तसवीर देख लो।

२. आजादी का अकुर

खेत पुराने, अभी बीज जो,
नए सिरे से अँकुराया है।
गांधी के सपनो को सजकर,
संविधान मे रग लाया है।

बढ़ता अंकुर-अंकुर दिखता,
ज्यो मानव कुटिया मे जीता।
बडे महल का बाहर जो हो,
भीतर उसका रीता-रीता।

बेलो की लिपटी ममता मे,
नित बढ़ने की पीर देख लो।
सविधान मे नवजीवन की
खिची एक तसवीर देख लो।

३ जनता का युग

फूल-फूल जन का मन खुलकर,
जीवन सुरभि उडेल रहा है।
पवन रसज्ञ उसे बिखराता,
जो हर कदम सकेल रहा है।

इंसानों की आबादी का,
अद्‌भुत साज-सजाव देख लो।
एक भूमि पर बढ़ते-चलते,
रंक देख लो, राव देख लो।

राजाओं के मुकुट उतर कर
जनपद-संग फकीर देख लो।
संविधान मे नवजीवन की
खिंची एक तसवीर देख लो।

४. विषमता का इकतारा

बरन-बरन के नर, रुचि, जातें,
धरम-भेद की लीला न्यारी।
अपने चोखे संस्कार की
हरी-भरी लहलही कियारी।

सभी विषमताओ के स्वर को,
इकतारे में हम गाते है।
जीवन गीत राष्ट्र का अपने,
कोटि कंठ मे रम गाते है।

मानवता का वेदव्यास यह
नेहरू बड़ा वजीर देख लो।
संविधान मे नवजीवन की
खिची एक तसवीर देख लो।

५. जनमत की प्रभुता

यह किसान, मजदूर, शिकारी,
नागर जनता निर्बल भोली।
सौंपेगी उनको अपना हित,
जो हों, उसके मन की बोली।

सुविधाओं के द्वार द्वार को,
जन की प्रभुता खुला रखेगी।
चलन-ढलन, शासन का उसकी
अभिलाषा की तुला लखेगी।

एक सरीखे हिलमिल विकसे
कदली और करीर देख लो।
सविधान मे नवजीवन की
खिची एक तसवीर देख लो।

६ चरित्र की गंगा

जन-जन के चरित्र की गंगा,
व्यक्ति, राष्ट्र के छू दोनों तट।
चिर-प्रवाह में लोकतंत्र के,
बहती, उर्वर, करती घट-घट।

घुने, पुराने राज्यतंत्र की,
दूर-दूर छड़की धाराएं।
खोकर अपनी व्यर्थ विलगता,
राष्ट्र-वेग मे जीवन पाए।

एक छत्र भारत का ब्रह्मा
उस पटेल का धीर देख लो।
सविधान में नवजीवन की,
खिची एक तसवीर देख लो।

७. लक्ष्यबेध का तूणीर

बीस बरस गाया हमने जो,
यह स्वतंत्रता-दिवस हमारा।
बलिदानो के त्याग-तेज का,
संविधान रच लाया प्यारा।

पत्थर, जीवन का घर गढ़ने,
उत्सव की लहरों में तिरते।
आज हर्ष के स्वर मे भावी—
भारत के सब बोझ संवरते।

लक्ष्य बेधने की क्षमता के
तीरों का तूणीर देख लो।
संविधान में नवजीवन की
खिंची एक तसवीर देख लो।

८. कर्तव्य का समुद्र

यह आनद आज के दिन का,
कभी न चुक पाए, यदि चाहो।
करतब के, जवाबदारी के,
भरे समुंदर मे अवगाहो।

छेद-छेद का सुर बसी के,
अपनी अंगुलियों से साधो।
खेल नियम से खेलो सुख का,
अपने ऊधो, अपने माधो।

मत बैठो तक़दीर-आसरे
युग लाया तदबीर देख लो।
संविधान में नवजीवन की
मनचाही तसवीर देख लो।

अंगारों की सदियाँ

(१)

अगारो की सदियाँ जिसमे
लपटों का अभियान बन गई।
वह मिट्टी का दिया कब्र के--
अंधकार को दूर करे क्यो ?
ऊपर उठनेवाली लौ जो
तल के तम को व्यर्थ हरे क्यों ?
जागा है उसके अन्तर मे
निज बल का जलता परिचय जब;

रँगी अग्नि-रस की काया मे,
हो त्रिनेत्र का रोषोदय तब,
लघुता आज बावली होकर,
रणचंडी का ध्यान बन गई।
अंगारो की सदियाँ लहकी,
लपटो का अभियान बन गईं।

(२)

उठता धुआं फूस-छप्पर से,
आसमान को ढांक रहा है,
बिन्दु-बिन्दु नद से उड़-उड़ कर
गहन मेघ-सा झांक रहा है,
हर तिनके को हवा लगी है
आँखो मे छिदती है नोके;
रजकण बना बवंडर फिरता
भले महल की ईंटे चौंके।
मरी हड्डियाँ, नवजीवन की,
पल मे अनुसंधान बन गईं।
अगारो की सदियाँ लहकी,
लपटों का अभियान बन गईं।

(३)

लगी घास की गंजी ऊँची,
खडे, खुले मे पशु मरियल हैं।
भरे कोठ गेहूं चावल के
बिलख रहे भिखमगे दल हैं।
टांकी भर पानी लुढ़का कर
नाली कुछ घर साफ कर रहे
प्यासे पशु, मनुष्य के बेटे
अगणित बेइन्साफ मर रहे;
देख, दिए की छाती फटकर
दावानल का प्राण बन गई।
अंगारों की सदियाँ लहकीं,
लपटों का अभियान बन गई।

(४)

धरती के भीतर की ज्वाला
सहसा लपट बन गई जी की।
पर्वत के अतर की दृढ़ता
फूट पडी लावा-नद ही सी।
जिसमे त्रस्त जनो की पीड़ा
तांडव करती बढी आ रही,
वैभव-दर्प-गर्व के सिर पर
उसकी मस्ती चढी जा रही,
अधकार पी, लौ धीरे से लोहित—
कर्म विधान बन गई।
अंगारो की सदियाँ जिससे,
लपटो का अभियान बन गईं।

अपना संबल

संबल अपना हो अपनापन।
माटी किसका आधार लिए ?
दाना ऊगे निज प्राण पिये।
कांटो, कीडो, आंधी, पानी मे
महक रहा फूलो का धन।
संबल अपना हो अपनापन।

अरमान उमड़ते आते हैं–
भर प्रलय गीत चुक जाते हैं।
क्यों पाहुन अपने मान लिये ?
इन पर न लुटा जी का कंचन।
संबल अपना हो अपनापन।

खुद आये, खुद जाना होगा–
खुद मिट, कुछ उपजाना होगा
अपनी सांसों में आग लगा,
करना है राख सभी बन्धन।
संबल अपना हो अपनापन।

नाते कितने ? मन में जितने,
बुद बुद जैसे इतने उतने।

टिक पाएं जो न पांव अपने,
तो रीता सपने सा जीवन।
संबल अपना हो अपनापन।

ज्वालामुख का पिघला अन्तर,
बादल का तरल सरल झरझर
निर्माण, नाश पर फलता है,
अपनी बलि पर अपना सिरजन
संबल अपना हो अपनापन।

नया गाना

एक सुनाओ ऐसा गाना।
इसका, उसका, सबका, मन का,
जिसमे खुलता रहे खजाना।
एक सुनाओ ऐसा गाना।

जिसमे हो हर ताल नया सा,
जिसका हो हर ख्याल नया सा,
जिसकी तान-तान मे खिंचता

बढता आए नया जमाना।
एक सुनाओ ऐसा गाना।

गूंजे, और बजा दे सबको,
और सजा दे जो बेढब हो,
सबके दिल मे एक झनक हो
सबसे निकले एक तराना।
एक सुनाओ ऐसा गाना।

मस्ती का फिर एक ठाट हो,
पांव पडे उस जगह बाट हो,
बाहर की भटकी दुनिया को–
भीतर का मिल जाए ठिकाना।
एक सुनाओ ऐसा गाना।

झरने को कंकर पहाड़ क्या ?
खुला खेत या मोड़-आड क्या ?
अपने पानी के कण-कण मे
उसने गाने को पहचाना ।
एक सुनाओ ऐसा गाना ।

जागृति गीत

बज उठे राग फिर एक बार।

अलसाई स्याही फिर घूमे,

उरपट शिथिल लेखनी चूमे;

स्वर के इकलौते, भावों के—

लाल लडैते नाचे, झूमे;

शब्द शब्द के रुँधे कंठ में,

गीतो का हो ज्वार।

बज उठे राग फिर एक बार।

बीते पल-पल की पद-रेखा,
अंकित कर ले जो-जो देखा;
अपनी ऊषा के सपनो को--
चित्रित कर दे बन चितलेखा;
स्वर मे बोले चित्र अनसुना,
प्राण धरे झंकार ।
बज उठे राग फिर एक बार ।

समय वायु के पग धर बीता,
अंतर मेरा रीता-रीता,
उसके डग-रज की प्रति कलिका,
मेरे कवि अर्जुन की गीता;
उडे कल्पना-सारथि के सग,
सज अनुभूति-सिंगार ।
बज उठे राग फिर एक बार ।

गीतों का सावन घिर आए,
हरियाली तूलिका चलाए;
उजड़ा एक न कण रह पाए,
अणु-अणु चिर जीवन लहराए,
तृषित जगत जीवे पी-पी कर,
अघट अनश्वर प्यार ।
बज उठे राग फिर एक बार ।

कूजित होवे मानव-प्रियता,
रीझे सारग-सी निर्दयता,
जो की प्रत्यचा पर खींचे—
शर पारधि बनकर निर्भयता;
मृगजल सूखे, बहे बालुका—
पर, ममता-रसधार ।
बज उठे राग फिर एक बार ।

पंगु न रह पाए पग कोई,
जागे शक्ति भुजा की सोई;
रहे न एक कंठ अनबोला,
हो हर बानी स्वत्व-भिगोई;
मद-आश्रित अधिकारो पर हो,
जन-जन का अधिकार।
बज उठे राग फिर एक बार।

-- स मा प्त --